UNIVERSAL LIBRARY
OU_182319
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81 K 45 J Accession No. H 3619

Author खरे, नर्मदाप्रसाद.

Title ज्योति-गंगा. 1956.

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्योति-गंगा

कवि

श्री नर्मदाप्रसाद खरे

•

भूमिका-लेखक

आचार्य विनयमोहन शर्मा

•

प्रकाशक

लोकचेतना प्रकाशन,

जबलपुर ।

प्रकाशक

लोकचेतना प्रकाशन,

जबलपुर।

•

प्रथम संस्करण

दिसम्बर, १९५६

मूल्य

१॥)

•

मुद्रक

शुभचिन्तक प्रेस,

जबलपुर।

अनुक्रम

	आदि कथन	...	१-१५
१.	अरे गीत गाओ	...	१
२.	मैं ताजमहल बन गया स्वयं फूलों का	...	३
३.	उषा रंग भरती, निशा पोंछ देती	...	६
४.	इतिहास न मेरा बदलेगा	...	८
५.	पूजा के क्षण बीत न जायें	...	१०
६.	तुम मरने का वरदान न मुझसे माँगो	...	१२
७.	डगर अटपटी, मंजिल ओझल	...	१४
८.	जाने कबकी देखादेखी, धीरे-धीरे प्यार बन गयी	...	१६
९.	नर वही है –	...	१८
१०.	मुझको पाषाण न समझो तुम	...	२०
११.	मंगल दीप जले !	...	२२
१२.	तुमने मेरी पीर न जानी, तुमने मेरा प्यार न देखा	...	२४
१३.	जल बरसाओ	...	२६
१४.	स्वर भरूँगा	...	२८
१५.	दीप अकेले जलना होगा !	...	३०
१६.	प्रेम की पागल पिपासा, क्या न तुम प्रिय हर सकोगे ?		३२
१७.	श्वेत फूल खिल रहे गगन में	...	३४
१८.	आज मन क्यों अनमना है ?	...	३६
१९	क्या जीवन भर तपना होगा ?	...	३८
२०.	मेरे दीप जलोगे कब तक ?	...	४०
२१.	नयन ने नयन से कभी क्या कहा था ?	...	४२

२२. आज दीप-निर्वाण हो गया ! ... ४४
२३. क्या हुआ यदि दूर हो तुम, नित्य अनुचिंतन करूँगा ! ४७
२४. यदि तुम मेरी बाँह गहो तो पथ के शूल फूल बन जायें ! ४६
२५. मौन रात-रानी तू आती ... ५१
२६. सखि, अब कुछ भी याद नहीं क्या ? ... ५३
२७. तुम तारों की झिलमिली न मुझे दिखाओ— ... ५५
२८. गीतकार उठ गया धरा से गीत आज भी बोल रहे हैं ५७
२९. कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी ! ... ५६
३०. निकल पड़ी जलधार— ... ६१
३१. हृदय-पट पर आँसुओं से— ... ६५
३२. सुख उस दिन नाच उठा था— ... ६७
३३. वीरों के स्मारक पर ... ६६
३४. प्रजातंत्र की वर्षगाँठ ... ७२
३५. त्रिपुरी ... ७४
३६. मदन-महल से ... ७७

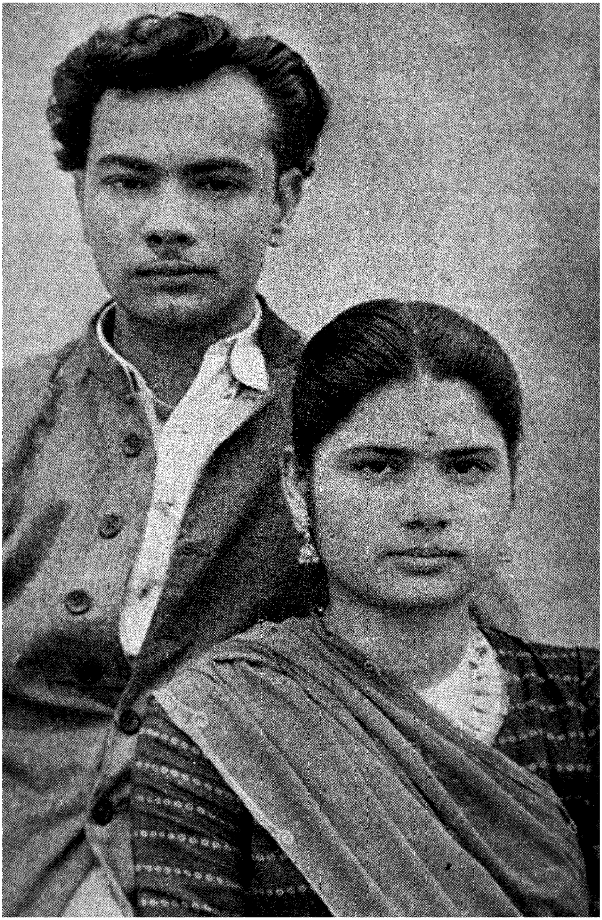

उषा और देवी

चि० उषा और देवी को

आदि कथन

श्री नर्मदाप्रसाद खरे मध्यप्रदेश के कीर्ति-लब्ध कवि हैं। कवि-सम्मेलन, आकाशवाणी और सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उनका श्रोताओं और पाठकों के मध्य हृदय-संवाद होता रहता है। उनका प्रथम कविता-संग्रह 'स्वर-पाथेय' के नाम से प्रकाशित हो समादृत हो चुका है। उसमें हृदय का मधुभीगा राग गीतियों में गुंजित है। यह उनका दूसरा कविता-संग्रह है, जो 'ज्योति-गंगा' के नाम से प्रकाश में आ रहा है।

'क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी' की तरह हिन्दी-कविता का रूप-बदलता रहा है, बोल बदलते रहे हैं। अतः 'ज्योति-गंगा' में कहाँ तक उसकी छाया है, कहाँ तक उसकी ध्वनि है, यह पहचानने के लिए उसके मूलभूत तत्वों का आकलन आवश्यक है।

आधुनिक काव्य-धारा द्विवेदी-युग से आज तक कई मोड़ों से लहराती हुई अग्रसर हुई है। द्विवेदी-युग में उसने पुराने पिष्टपेषित वासनापूरित रतिभाव तथा प्रादेशिक ब्रजभाषा के विरुद्ध विद्रोह कर नूतन प्रवृत्ति का परिचय दिया। उस समय वह 'खड़ी बोली की कविता' के नाम से पहचानी जाती थी। उसकी वस्तु व्यङ्गपूर्ण उक्ति–उद्गारों से लदी रहती थी और लक्ष्य-संधान तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक वृत्त था।

जब देश स्वाधीनता की आकांक्षा से आन्दोलित हो उठा, तब उसकी प्रतिध्वनि हिन्दी-कविता में भी सुन पड़ी। यह उसके प्रवाह का दूसरा मोड़ था। इस प्रतिध्वनि में जनता की राजनीतिक

महत्वाकांक्षा और उसकी कलात्मक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति सुनाई दी जो क्रमशः 'राष्ट्रीय कविता' और 'छायावादी' तथा 'रहस्यवादी कविता' के नाम अभिहित की जाने लगी। यह 'रहस्यवादी कविता' द्विवेदी-युग की स्थूल प्रतीकधर्मा धार्मिक कविता का युगानुरूप रूपान्तर था। अन्तर यही था कि उसमें सूक्ष्म और नूतन प्रतीकों में देश के बहुजन-मान्य धार्मिक विश्वास को अभिव्यक्ति दी गयी थी। द्विवेदी-युग के राम, कृष्ण और राधा 'प्रिय' और 'प्रियतम' के रूप में उतर कर रहस्य-अवगुंठन की अभिव्यक्ति में सहायक हुए। इस युग की कविता में भी रूढ़ि के प्रति विद्रोह का स्वर प्रबल था।

देश की स्वाधीनता का आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में गतिशील हो रहा था। उसमें भारतीय मानव-संस्कारों के अनुरूप सत्य और अहिंसा का अधिक आग्रह था और इन्हीं के सहारे ब्रिटिश सत्ता के पशुबल को हतप्रभ करने की चेष्टा की जा रही थी। इस धर्मयुद्ध ने देश में जाग्रति की अभिनव हिलोर उत्पन्न कर दी थी। महात्मा गांधी समाज और धर्म में रूढ़ अप्रकृत असहिष्णुता को आत्म-सुधार के मार्ग से दूर करने में रत थे। इसी समय देश में एक ऐसा दल तैयार हो रहा था जो गांधी जी के जीवन-दर्शन में विश्वास नहीं रखता था, उसे प्रतिगामी मानता था। उसकी आस्था हिंसक क्रान्ति में थी। वह समाज की समस्त प्राचीन मान्यताओं को ध्वस्त करने के लिए यत्नशील था। इस दल का आन्दोलन गुप्त रूप से देश में प्रचलित था; जिसके अस्तित्व का भान समय-समय पर होने वाली हत्याओं, डकैतियों और बम्ब-विस्फोटों आदि के रूपों में होता रहता था। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन को योरप के आयरलैंड, इटली, फ्रान्स और रूस के क्रान्तिकारी विद्रोहों से प्रेरणा मिलती रहती थी। हिन्दी-कविता, जो वर्षों गांधी-आन्दोलन की प्रवृत्तियों से अनु-प्राणित रही, धीरे-धीरे मार्क्स के सिद्धान्तों की परिभाषा बन गयी। उसका गगनदर्शी आध्यात्मिक स्वर हथौड़ों और मिलों के भोंपुओं की

आवाज़ों में विलीन हो गया। उसका कल्पना से सँवरा हुआ रूप वास्तविकता की धरती पर सरपट दौड़ के कारण धूल-धूसरित हो गया। उससे 'हम नंगे हैं, भूखे हैं, शोषित हैं, पीड़ित हैं' की चीत्कार सुनाई देने लगी। इसे ही प्रगतिवादी रचना के नाम से पहचाना जाने लगा। यह द्वितीय महायुद्ध का काल था। सारा संसार रक्तरंजित हो रहा था, मानवता अंतिम सांसें ले रही थी। यद्यपि हमारे देश की भूमि पर युद्ध नहीं लड़ा गया तो भी तत्कालीन शासकों की कृपा (?) से उसे धन-जन की आहुति देनी ही पड़ी। इस युद्ध ने हमारी आर्थिक अवस्था को इतना झकझोर दिया कि लाखों व्यक्ति बिना गोलाबारी के ही भूख की आग में स्वाहा हो गए। जनता का नैतिक पतन भी पराकाष्ठा को पहुँच गया। पूँजीपतियों ने चोरबाज़ारी का निर्मम व्यापार प्रारम्भ कर दिया। उधर योरप के युद्ध में नित्य असत्य-प्रचार और विश्वासघात का तांडव हो रहा था। राष्ट्र परस्पर संधि-पत्रों की धज्जियाँ उड़ा कर विश्वासघात कर रहे थे और अपनी साम्राज्य-लिप्सा की पूर्ति में व्यस्त थे। मानव-कल्याण और स्वातन्त्र्य के नाम पर युद्ध लड़ा जा रहा था और लाखों मानवों का नित्य संहार और स्वातन्त्र्य-अपहरण हो रहा था। सभ्यता के मूर्धन्य राष्ट्र (?) ने जब हिरोशिमा की असंख्य निरपराध जनता पर एटम बम फेंककर प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित किया तब मनुष्य के सामने सभ्यता और असभ्यता की मान्य परिभाषाओं के प्रति संदेह उत्पन्न हो गया, जिसकी भयंकर प्रतिक्रिया संसार भर की सभी भाषाओं के साहित्य में दिखाई दी। हिन्दी-साहित्य उससे अछूता कैसे रह सकता था ?

जो हिन्दी की प्रगतिवादी कविता को शत-प्रतिशत बाह्य वातावरण-प्रेरित मानते हैं, उन्हें तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि का भी अध्ययन कर लेना चाहिए। हमारा विश्वास है कि उसकी सृष्टि भारतीय समाज की तत्कालीन स्थिति की प्रतिक्रिया में है, जिसके रूप में विदेशी रंग थोड़ा-बहुत अवश्य चढ़ गया है। मनुष्य के हिंसक और

स्वार्थपूर्ण जघन्य व्यापारों के प्रति कवि का संवेद्य हृदय यदि खीझ, घृणा और व्यङ्ग से भर गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? प्रगतिवादी कविता में शोषक और शोषितों का संघर्ष जब तक देश की परिस्थिति के अंकन के रूप में होता रहा, तब तक वह सर्वथा भारतीय रही, किन्तु जब उसमें मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रतिपादन और चीन और रूस के विजय-गीतों का संकलन किया जाने लगा तब उसमें प्रचार की एकांगिता ने उसे विरस बना दिया और वह उधार ली हुई अपरिचित वस्तु-सी जान पड़ने लगी!

काव्य की वस्तु की एकांगिता को दूर करने की दृष्टि से साहित्य-जगत् में एक नया आन्दोलन खड़ा हुआ, जिसकी घोषणा 'तार सप्तक' के प्रथम भाग में सुनाई दी। यद्यपि उसके सम्पादक ने किसी वाद के प्रवर्त्तक का श्रेय अपने ऊपर नहीं लिया और नई प्रवृत्ति के कवियों के सम्बन्ध में स्वीकार किया कि 'कवि किसी मंज़िल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी हैं' तो भी इन कवियों को हिन्दी-कविता में प्रयोगवाद को प्रचलित करने का गौरव प्राप्त हो ही गया। इस वाद की रचनाओं के विषय तो प्रगतिवादी कविताओं के रहे ही, साथ ही उनमें सृष्टि के बाह्य और जीवन के विभिन्न रूप भी सम्मिलित कर लिए गये। अभिव्यक्ति में कला को अधिक महत्व दिया जाने लगा। विज्ञान के नूतन आविष्कारों से अप्रस्तुत विधान खोजने का प्रयत्न किया जाने लगा। संक्षेप में, अतीत के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विश्वासों के प्रति व्यङ्गपूर्ण विद्रोह और गद्यात्मक रूप-विधान प्रयोगवादी कविता का लक्षण बन गया।

प्रयोगवादी नाम को विवादास्पद समझ कर अब इसे 'नई कविता' के नाम से पुकारा जाने लगा है। अमरीका में इसी प्रकार की 'एक्सपेरीमेंटल पोयटरी' अब 'न्यू पोयटरी' कहलाने लगी है और

इंग्लैंड में इसे 'न्यू मूव्हमेंट' की आधुनिक रचना कहा जाता है। इस आधुनिकतम काव्य-धारा के उद्घोषकों में अब ईलयट, ऑडेन, स्पेंडर आदि प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्तियों का नाम नहीं सुन पड़ता। काल की अबाध गति इन नामों को धीरे-धीरे अतीत की ओर फेंकती जा रही है।

स्पेंडर ने आधुनिक कविता की आलोचना करते हुए लिखा है कि आधुनिकतावादी कवि परम्परा का अत्यधिक और अनावश्यक तिरस्कार कर रहे हैं और मनुष्य के एकान्तिक व्यक्तित्व को आवश्यकता से अधिक महत्व दे रहे हैं...इन आधुनिक कविताओं का (जनता पर) क्या प्रभाव पड़ा ? राजनीतिक परिस्थितियों पर रचित कवितायें अच्छी नहीं थीं।

मानवीय प्रतिक्रियाओं का अंकन, प्राचीन रूढ़ियों और विश्वासों की अवज्ञा, व्यङ्गपूर्ण गद्यात्मक अभिव्यञ्जना; यही तो 'नई कविता' का स्वभाव है।

'नई कविता' की प्रकृति का आभास देने के लिए निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

—दम ले लो
साहस बाँधो
फिर बढ़ कर पिछड़ी राह पूर लो
गिरते-पड़ते भी
कन्धे से कन्धा जोड़ो
आहत होकर भी
असत्य की तेज दौड़ में साथ बढ़ चलो
तुम असत्य के परिचायक हो
तुम न रहे तो
यह असत्य ही
सत्य समझ बैठा जायेगा

और गह का अन्वेषी
आँखें खो देगा
केवल टकरायेगा
बेबस, शोर शराबे का अनुसरण करेगा

× × ×

एक प्रसिद्ध 'नई कविता' वादी की रचना इस प्रकार है—
मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टेच्यू
उतना ही प्यारा है जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग के स्वर्गीय महल
मक्का-मदीना से कम पवित्र नहीं
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्यायें
दोनों दुनियाओं के चौखटों पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

यदि 'नयी कविता' के उपर्युक्त उदाहरणों को सीधे-सादे गद्य में लिख दिया जाय तब भी उनमें व्यक्त विचारों की प्रभविष्णुता में (?) कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। ऐसी दशा में हम ऐसी रचनाओं को 'नई कविता' न कह कर 'नया विचार' ही क्यों न कहें ?

हमारा यह आग्रह नहीं कि छन्द के बिना कविता लिखी ही नहीं जा सकती। छायावाद-युग में समर्थ कवियों ने छन्द - मुक्त रचनायें लिखी हैं, जिनमें रूप-विधायिनी कल्पना, हृदयस्पर्शी भाव तथा लयमय भाषा का प्रबल आकर्षण है। आज की अधिकांश 'नई कविता', दुःख है, इन तत्वों से शून्य है। छायावादी कविता पाठ्य और गेय दोनों रूपों में पायी जाती है। परन्तु 'नई कविता' अधिकांश में केवल पाठ्य और वह भी कष्टप्रद पाठ्य रह गयी है।

'नई कविता' ने छायावादी परम्परा से गीति-तत्व को ग्रहण नहीं किया। उसकी छन्दमुक्तता को सिद्धान्तरूप से अवश्य स्वीकार

किया है। क्या उसके पद-लालित्य को इसलिए बहिष्कृत कर दिया गया कि वह बीते युग की सम्पत्ति थी? जिन नई कविताओं में गीतात्मकता पायी जाती है, वे अपने अभिनव अप्रस्तुत विधान के कारण प्रेषणीय हैं। काश, अधिक संख्या में ऐसी कविताओं की सृष्टि होती! अधिकांश 'नई कविता' शुष्क तर्कमय गद्य का रूप लेकर ही विच्छिन्न विचारों के साथ प्रकाशित हो रही है, जो सीमित बुद्धिवादियों की ही उपभोग्य वस्तु सिद्ध हुई है। जन-सामान्य का न वे हृदय छू सकी हैं और न उनका उद्बोधन कर सकी हैं।

अमरीकी 'नई कविता' में पौराणिक संदर्भों और प्रसिद्ध लेखकों तथा कवियों के वचनों को उद्धृत करने की एक परिपाटी चल पड़ी है। जिसका हमारे नये कवि यदा-कदा अनुकरण करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार के 'ईलयिटी शिल्प' से भी रचना में दुरूहता आने की संभावना बढ़ जाती है। सजीव काव्य में अभिनव भाव-वैभव और शिल्प-विधान की जितनी आवश्यकता है उतनी ही उसके संवेद्य होने की भी। यदि 'नई-कविता' में यह साधित हो सका तो वह साहित्य में चिनगी मात्र न रह कर, शाश्वत लौ के रूप में प्रतिभासित होती रहेगी।

आज नई कविता का जो सामान्य रूप है उसे देखकर प्रश्न उठता है कि यह गरिष्ठ (बौद्धिक) 'हविष्य' किस देवता के लिए है? क्या नई कविता के कवि ने स्वांतः सुखायः को ही अपना लक्ष्य बना रखा है? उसके अहमवाद ने अतीत की सारी मान्यताओं को तोड़ने के बावजूद किस उदात्त चेतना को प्रतिध्वनित किया है? क्या युग की चित्रकारी मात्र उसका लक्ष्य है? क्या युग की असंस्कारी भावनाओं का अंत करने में वह अपनी कला का उपयोग नहीं करना चाहता? घृणा, व्यङ्ग, अश्रद्धा, अविश्वास के स्थान पर क्या वह प्रेम, श्रद्धा और विश्वास जैसी मानवीय कोमल भावनाओं को झंकृत करने के लिए प्रस्तुत नहीं है?

इन प्रश्नों के बीच जब हम 'ज्योति-गंगा' के गीतों को पढ़ते हैं तब हमारे हृदय में आशा की ज्योति आलोकित हो उठती है। उसमें नये युग की व्यापक सामाजिक मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब ही नहीं है, उसकी संयत प्रतिक्रिया भी है। उसमें मनुष्य के अन्तर में अलक्ष्य रूप से स्पन्दित देवत्व के प्रति श्रद्धा भी है, विश्वास भी है। कवि जड़ देहवादी नहीं है। वह सृष्टि के बाह्य-सौन्दर्य पर मुग्ध हो विभोर होता है और मानव-प्रेम के गीत भी गाता है। उसकी व्यष्टि और समष्टि दोनों के प्रति ममता है, सहानुभूति है।

'ज्योति-गंगा' जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का स्पर्श करती हुई प्रवाहित हुई है। प्रकृति के अंचल को छूती हुई वह मानव-प्रेम के रोमांचकारी अनुभव, सामाजिक क्षेत्र के चढ़ाव-उतार, राष्ट्रीय पर्व और स्मारकों की स्मृति, मानव के आत्म-बल की उद्घोषणा आदि सभी को समेटती हुई अग्रसर हुई है।

कवि का प्रकृति के प्रति सामान्य द्रष्टा या छविकार के समान भाव नहीं है। उसमें उसके जीवन का हर्ष और विषाद प्रतिबिम्बित है। उसे वह केवल जड़ वस्तु नहीं समझता; मानव-जीवन का एक अंग ही मानता है। नीरव रजनी के मौन आगमन का एक लुभावना चित्र निम्न पंक्तियों में अंकित हुआ है :—

मौन रात - रानी तू आती—
अंचल के चमकीले मोती, आ नभ-आँगन में बिखराती।
दूर, क्षितिज के पार सूर्य को, सर्जनि कौन चुपचाप बुलाता?
वसुधा का आलोकित मुख जब, तम-अवगुंठन में छिप जाता;
निर्जन में तरु के शिखरों पर, तू आ झिलमिल दीप जलाती।
मौन रात-रानी तू आती॥
नीरवता दिशि-दिशि में हँसती, लहरों में संगीत न होता,

मधुप-पुंज गुंजार भूल कर, बन्दी हो पंकज में सोता,
तब तू अपना तिमिर-प्यार ले, जग के प्राणों पर छा जाती।
मौन रात-रानी तू आती ॥

निस्तब्ध रजनी में कवि को चिर परिचित पग-ध्वनि सुनाई पड़ती है पर वह साकार नहीं हो पाती इसलिए—

चिर परिचित वह पग-ध्वनि सुन-सुन, तारे गिन मैं अलख जगाता,
दूर,—वहाँ तम के परदे में, पर अपनी छाया ही पाता,
तू बेला - निशिगन्ध - सुमन ले, क्यों 'उनके' पथ में बिछ जाती ?

निशा की नीरवता में कवि को किसी अदृश्य सत्ता का आभास मिलता है। दूसरा गीत भी निशा से सम्बन्धित है। आकाश के तारों को लक्ष्य कर वह गाता है—'श्वेत फूल खिल रहे गगन में'। उन श्वेत फूलों में कवि को अपने ही आँसुओं के मोतियों की चमक दिखती है। रात के अन्धकार में उसे अपने ही सूनापन का अनुभव होता है। रात भर उसकी असफल प्रतीक्षा होती रहती है—

आँखों में रजनी कटती है,
बड़ी देर में पौ फटती है,
पल-पल ये आँखें भर आतीं, सिहर-सिहर उठती क्षण-क्षण में।

'जल बरसाओ' में धरती की मनुहार मानो समस्त सृष्टि की ही अतृप्त प्यास बन कर उच्छ्वसित हो रही है—

मैं धरती युग - युग की प्यासी,
आज स्वयं बन गयी उदासी,
कण-कण, तृण-तृण हरे करो फिर
हे जलधर, हे गगन - प्रवासी
हे मेरे करुणा-घन बरसो, गले लगाओ,
—प्राण जुड़ाओ।

सच बात तो यह है कि तटस्थ होकर कवि ने कहीं भी प्रकृति को नहीं देखा है। उसका प्रकृति के साथ हृदय-संवाद ही हुआ है। उसके प्रेम-गीत भावावेश प्रचुर होते हुए भी मर्यादित हैं। उसकी आकांक्षाएँ अभिव्यक्ति की सीमा जानती हैं।

जाने कब की देखादेखी धीरे-धीरे प्यार बन गयी।
लहर-लहर में चाँद हँसा तो लहर लहर गलहार बन गयी॥

में कवि की प्रणय-पत्रिका के पृष्ठ खुलकर रोमांच का मधुर गीत बन गये हैं।

स्वप्न-सँजोती-सी वे आँखें, कुछ बोलीं, कुछ बोल न पायीं,
मन-मधुकर की कोमल पाँखें, कुछ खोलीं, कुछ खोल न पायीं,
एक दिवस मुसकान-दूत जब, प्रणय-पत्रिका लेकर आया;
ज्ञात नहीं, तब उस क्षण मैंने, क्या-क्या खोया, क्या-क्या पाया ?
क्षण भर की मुसकान तुम्हारी, जीवन का आधार बन गयी।

इस गीत की प्रेयसी का रूप जायसी की 'पद्मावती' से स्पर्द्धा कर कहा है—

तुमने रूप सँवारा अपना, मधुऋतु का शृंगार हो गया,
तुमने वेश सँवारा अपना, इन्द्रधनुष साकार हो गया,
तुमने ज्योंही गीत उठाया, कोकिल-स्वर चुपचाप सो गया,
अधरों के हिलते ही जैसे प्राणों का अभिसार हो गया,
प्राण ! तुम्हारी गीत-मधुरिमा दिशि-दिशि का विस्तार बन गयी !
तुमने अपनी मांग भरी तो ऊषा को मुसकान मिल गयी,
प्राणों को, प्राणों की जैसे युग-युग की पहचान मिल गयी,
तुमने तनिक निहारा हँसकर, फूल-फूल पर हास झर गया,
कली-कली के नयन खुल गये, कन-कन में उल्लास भर गया,
बहुत दिनों की दूरी पल में, अरे मिलन-त्यौहार बन गयी !

भावों की सुकुमारता, भाषा का लालित्य और कल्पना की उठान में यह गीत संग्रह के उत्कृष्ट गीतों में है।

'तुमने मेरी पीर न जानी, तुमने मेरा प्यार न देखा' दूसरा प्रेम-गीत है, जिसमें किसी की निष्ठुरता को कोसा गया है—

मैंने सदा तुम्हारे पथ में काँटे बीन फूल बिखराये,
भ्रकुटि-भंगिमा होने पर भी गीत वंदना के दुहराये,
तुमने अश्रु-अर्चना देखी, मन का हाहाकार न देखा !

किस प्रकार नयन परस्पर नयनों की भाषा पढ़ लेते हैं; कब प्रणय दो हृदय को अभिभूत कर लेता है, कहा नहीं जा सकता—

विनत लोचनों की मधुर-मुग्ध भाषा—
न जाने कहाँ की सुधा ढोलती थी ?
नशीली हँसी की मदिर-मुग्ध आभा—
नहीं जान पाया कि क्या बोलती थी ?

'सुख उस दिन नाच उठा था,' में प्रसाद के 'आंसू की गति' में कवि की स्नेह-घटा ने रसधार की वृष्टि की है—

शशि मानो चमक उठा था,
अलकों के श्याम घनों में।
सपना साकार हुआ था,
चुपके - से बहुत दिनों में ॥

\+ + +

मानस की मुग्ध तरङ्गें,
राका - शशि चूम रही थीं।
किरनों के भुज-बन्धन में
बेसुध हो झूम रही थीं ॥

छायावाद-युग में इस आँसू छंद° की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

प्रेम-गीतों में 'सखि अब कुछ भी याद नहीं क्या ?' में भावना

° स्वर्गीय अवध उपाध्याय ने अपने नवीन पिंगल में इसे इसी नाम से अभिहित किया है।

स्थूल परिधि पर उतावलेपन के साथ मड़रा रही है। इसमें मेरी कसम, शिकवे, फरियाद, दिल की बस्ती और यादों की आबादी के भीतर शायराना बेसब्री है, जो 'ज्योति-गंगा' से दूर रहती तो बेहतर होता।

कवि ने महात्मा गांधी, कवि केशवप्रसाद पाठक और स्वातन्त्र्य-युद्ध के शहीदों की स्मृति में भावभीनी शोकाञ्जलियाँ अर्पित की हैं। आजादी के दीवाने तरुणों की याद में, जो फाँसी पर हँस-हँसकर झूल गये, कवि आँखों से जलधार बहाता है—

> जो शोला बन फूट पड़े थे,
> राख हुए, उड़ गये कहाँ?
> तूफानों के बीच न जाने,
> बुझे कहाँ, गड़ गये कहाँ?
> जिनकी हरी दूब - सी पत्नी
> अब भी बैठ रोती है;
> जिनकी बूढ़ी माँ बेचारी
> आँसू से मुँह धोती है;
> उनको अञ्जलि देने ही तो निकल पड़ी जलधार—
> हमारी आँखों से जलधार।

युवती पत्नी का हरी-दूब उपमान प्रयोगवादियों को सुखकर ही प्रतीत होगा। कवि को यह उपमान कदाचित अधिक आकर्षित करता है। उसने 'तुम मरने का वरदान न मुझसे माँगो, जीवन की मुसकान पुलक-मन लेलो' गीत में भी उसका प्रयोग किया है। वह अपनी 'तुम' से कहता है—

> नित नव उमंग ले मन में, नव दूर्वा सी मुसकाओ।

'ज्योति-गंगा' में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं से पूरित रचनायें भी संकलित हैं। 'प्रजातंत्र की वर्षगाँठ', 'वीरों के स्मारक से', 'त्रिपुरी', 'मदन-महल से' आदि इसका उदाहरण हैं। मनुष्य में आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता और कर्म शौर्य की स्फूर्ति भरने वाले भाव भी कई गीतों में हैं—

देवता पत्थर नहीं है, मनुज में ही देवता है।

\+ + +

तारकों की झिलमिली से सुख कभी मिलता नहीं है,
बिना रवि का ताप झेले, सुमन - मन खिलता नहीं है,
तारकों की छाँह तज जो धूप में पाँखें पसारे,
कर्म के गांडीव से जो स्वर्ग को भू पर उतारे,
वज्र-सा टूटे सदा निज लक्ष्य पर जो, शर वही है।
—नर वही है॥

\+ + +

पवन - प्राण लेकर लड़ो आँधियों से—
सदा मुसकुराओ।
अरे, गीत गाओ॥

\+ + +

सूरज की किरन रुकी कब, नभ के वज्राघातों से,
फूलों की सुरभि लुटी कब, झंझा के उत्पातों से,
तूफान पाँव में बाँधे, लड़ता जो बड़वानल से,
कब उसकी नाव रुकी है, भीषण झँझावातों से,
मैं कूल स्वयं बन गया अतल सागर का—
अब दुनिया से पतवार नहीं माँगूंगा।

\+ + +

बहुत देव पूजे, मनुज को निहारो,
मनुज के करों से मनुज को न मारो,

गगन को न देखो, धरा को सँवारो,
नये चाँद - सूरज धरा पर उतारो,
प्रगति - प्रेरणा के अडिग श्री-पदों पर
हिमालय स्वयं भी विनत सिर झुकाता।

कवि ने मानव को उसके ही भीतर छिपी हुई अनन्त शक्ति को पहचानने के लिए प्रेरणा दी है। योरप के अनेक कवियों ने इसी भाँति मानववादी स्वर निःसृत कर मनुष्य की सर्वोपरि सत्ता की घोषणा की है। चंडीदास के पदों में भी मानव-सत्य की प्रतिष्ठा की गूँज है। मानव का पुरुषार्थ ही अपने धेय की ओर अग्रसर होने में है—

कब रुकता अरे समय का रथ?
कब रोक सकीं चट्टानें पथ?
रुकना जीते - जी मरना है—
मृत्युञ्जय बन विष पी लूँगा,
काँटों में फूल खिला दूँगा।

कवि के द्वारा मानव की अपार सत्ता की स्वीकृति का यह आशय नहीं है कि उसने मानव से परे जो अनिर्वचनीय सत्य है उसको विस्मृत कर दिया है। उसकी निष्काम पूजा के लिए उसके हृदय में सतत आतुरता विद्यमान रहती है—

पूजा के क्षण बीत न जायें।
अर्घ्य चढ़ाने के पहले ही नयनों के घट रीत न जायें॥
दूर गगन में वास पिया का,
और मंद आलोक दिया का,
बुझ न जाय यह दिया प्राण का, फूल न पूजा के मुरझायें।

'ज्योति-गंगा' के गीतों में विविधता है। मानव-जीवन के शाश्वत भाव तथा युग की विचार-धारा उनमें सम्मिलित हो उन्हें

अभिनव रूप प्रदान कर रही है। उनमें काव्य के किसी वाद विशेष के प्रति बिलकुल आग्रह नहीं है। वे सहज ही उद्भूत हुए हैं और सहज ही अभिव्यक्त भी। इसीलिए उनमें स्पृहणीय प्रवाह है, जो आज की कविता में दुर्लभ होता जा रहा है। कवि ने अकारण व्यङ्ग-शर से किसी को विद्ध नहीं किया। उसने अपने पाठकों को अपरिचित दिशा में भटकाने का भी प्रयत्न नहीं किया। वह उसके साथ तुरन्त एकात्म भाव स्थापित कर लेता है। कवि की यह बड़ी सफलता है और इसी में कविता की सार्थकता भी है। हमारा विश्वास है कि 'ज्योति-गंगा' अपनी सरस उदात्त भावना द्वारा जन-मन का सतत रंजन करती रहेगी।

विनयमोहन शर्मा

महाकोशल महाविद्यालय,
जबलपुर
२१-१२-५६

१

अरे, गीत गाओ—
गगन से धरा तक बही ज्योति-गंगा,
नहाओ, नहाओ !
अरे, गीत गाओ !

पवन ने कली को सदा गुदगुदाया,
कली ने पवन को न अपना बनाया !
कली झर चुकी पर पवन झूमता है,
धरा चूमता है, गगन चूमता है।
पवन-प्राण लेकर लड़ो आँधियों से—
सदा मुसकुराओ !
अरे, गीत गाओ !

शलभ प्राण देने को हर क्षण मचलता,
मगर प्राण देकर भी क्या प्यार मिलता ?
जलन-ज्वाल में प्यार पलता रहा है,
शलभ मर मिटा, दीप जलता रहा है !
शलभ-प्राण लेकर बढ़ो प्रेम-पथ पर,—

न आँसू बहाओ ।
अरे, गीत गाओ !

लहर ने पुलिन से न ममता बढ़ायी,—
कभी भूलकर भी न अञ्जलि चढ़ायी !
प्रलय-ज्वार में भी पुलिन ने पुकारा,—
सहारा दिया. और हँसकर दुलारा;
पुलिन-प्राण लेकर सहो प्रेम-पीड़ा,—

न मन में लजाओ ।
अरे, गीत गाओ !

अरे, प्यार करने को जीवन मिला है,
अकिञ्चन मनुज को हृदय-धन मिला है,
सदा प्यार बाँटो, सदा रस उलीचो,
सदा प्रेम-पथ को नयन-जल से सींचो—
अरे, प्रीति-गंगा जगत में बहाओ,—

स्वयं प्रीति पाओ !
अरे, गीत गाओ !

❀

२

मैं ताजमहल बन गया स्वयं फूलों का,
अब दुनिया से मैं प्यार नहीं मांगूँगा।

*

कलियों से कह दो चाहें अपना अवगुण्ठन खोलें,
फूलों से कह दो चाहें मधु-सौरभ से मुख धोलें,
मधुपों की टोली गाये, कोयल संगीत सुनाये,
नन्दन-वन भू पर उतरें, कण-कण में मधु-रस घोलें,
मैं माधव बन उतरा जग के आँगन में—
अब फूलों का शृंगार नहीं मांगूँगा।

हीरक-मणियों से मंडित भू पर उतरे शशि-बाला,
सोलहों कलाएँ लेकर ज्योतित हो रूप-उजाला,
सौन्दर्य-मधुरिमा के घन, झर झर मंगल बरसायें,
आनन्दित धरा-गगन हों, शीतल हो अन्तर्ज्वाला,

आराध्य स्वयं बन गया पुलक प्राणों का—
अब पूजा का अधिकार नहीं मांगूँगा।

*

सूरज की किरन रुकी कब, नभ के वज्राघातों से?
फूलों की सुरभि लुटी कब, झंझा के उत्पातों से?
तूफान पाँव में बाँधे, लड़ता जो बड़वानल से,
कब उसकी नाव रुकी है, भीषण झंझावातों से?

मैं कूल स्वयं बन गया अतल सागर का—
अब दुनिया से पतवार नहीं मागूँगा।

*

मेरी इच्छा से जग की अगणित साँसें चलती हैं,
मेरे इंगित पर नभ की दीपावलियाँ जलती हैं,
धरती-अम्बर, रवि-शशि को, मुट्ठी में बाँध लिया है,
संहार-सृजन हेलाएँ मुझ में ही तो पलती हैं,

संसार स्वयं बस गया हृदय में मेरे—
अब सोने का संसार नहीं मांगूँगा।

*

मैं जनम-जनम का गायक, जाने कब से गाता हूँ,
पूजा के गीत अधूरे युग-युग से दुहराता हूँ,
पगध्वनि प्राणों में घुल-मिल बन गयी पावनी गीता,
उस जीवन-गीता को ही छन्दों में बिखराता हूँ,

मैं गीत स्वयं बन गया विश्व-अधरों का—
अब और अधिक विस्तार नहीं मांगूँगा।

❀

३

उषा रंग भरती, निशा पोंछ देती;
मगर सूर्य फिर भी नया प्रात लाता !

अगम सिन्धु मे नित लहर सिर उठाती,
विषम ज्वार से भी विहँस जूझ जाती,
प्रकम्पित तरी को किनारे लगाती,
विषमता लजाती, लहर गीत गाती,

लहर ने सदा कूल का उर जलाया,
मगर कूल फिर भी लहर को बुलाता !

कभी दिन विहँसता, कभी रात रोती,
कभी हार होती, कभी जीत होती,
किरण नव प्रभा के नये बीज बोती,
धरा ने लुटाये सदा स्वर्ण-मोती,

विषम पथ मनुज को नहीं रोक पाता,
स्वयं लक्ष्य आकर चरण चूम जाता !

विगत भूल जाओ, नया स्वर उठाओ,
नयी रागिनी में, नया गीत गाओ,
स्वयं दीप बनकर जलो, तम हटाओ,
गगन जगमगाओ, धरा जगमगाओ,

शलभ के मरण पर भले विश्व हँस ले,
मगर अग्नि-पथ ही शलभ को सुहाता !

बहुत देव पूजे, मनुज को निहारो,
मनुज के करों से मनुज को न मारो,
गगन को न देखो, धरा को सँवारो,
नये चाँद-सूरज धरा पर उतारो,

प्रगति-प्रेरणा के अडिग श्री-पदों पर,
हिमालय स्वयं भी विनत सिर झुकाता !

❋

४

इतिहास न मेरा बदलेगा!

इतिहास बदलते आये हैं, इतिहास न मेरा बदलेगा!

पथ में कितने ही फूल मिलें,
पथ में कितने ही शूल मिलें,
है दूर सामने लक्ष्य एक,—
मैं उसको निकट बुलाऊँगा,
या स्वयं लक्ष्य बन जाऊँगा,

विश्वास बदलते आये हैं, विश्वास न मेरा बदलेगा!

कब रुकता अरे समय का रथ ?
कब रोक सकीं चट्टानें पथ ?
रुकना जीते जी मरना है !
मृत्युञ्जय बन विष पी लूँगा,
काँटों में फूल खिला दूँगा,

मधुमास बदलते आये हैं, मधुमास न मेरा बदलेगा !

मंजिल पर कोई डोल रहा,
चिरमौन मुखर हो बोल रहा,
मै मधुर मिलन की चाह लिए,
रवि-शशि के दीप जलाता हूँ,
दिशि-दिशि आलोक लुटाता हूँ.

आकाश बदलते आये हैं, आकाश न मेरा बदलेगा !
इतिहास बदलते आये हैं, इतिहास न मेरा बदलेगा ॥

५

पूजा के क्षण बीत न जायें।
अर्घ्य चढ़ाने के पहले ही नयनों के घट रीत न जायें ॥

दूर गगन में वास पिया का,
और मन्द आलोक दिया का,

बुझ न जाय यह दिया प्राण का, फूल न पूजा के मुरझायें ॥

पथ निहार आँखें पथराईं,
सजल – प्रार्थनायें दुहराईं,

वर न मुझे दें, दर्शन दे दें, प्राण हँसें, लोचन मुसकायें ॥

आत्म - विसर्जन की अभिलाषा,
पढ़ लें उर - अन्तर की भाषा,

साँस-साँस अभिमंत्रित कर प्रिय, मुझको परम-पुनीत बनायें ॥

युग - युग के अर्चन - वंदन से,
स्नेह - साधना, अमर लगन से,

जीवन के शत-शत पुण्यों से, पाप पुरातन जीत न जायें !
पूजा के क्षण बीत न जायें ॥

*

६

तुम मरने का वरदान न मुझसे माँगो,
जीवन की मुसकान पुलक-मन ले लो।

मेरी साँसों के सौरभ से सुरभित हर साँस तुम्हारी,
मेरे वासंतीपन से हँसती जीवन-फुलवारी,
तुम प्राण-पिकी बन मेरी, गीतों का जादू फेरो,
मेरा किरनीलापन ले कण-कण में स्वर्ण बिखेरो,
रस-स्नेह निमज्जित होकर, बन जाओ प्रेम-पुनीता,

तुम बुझने का वरदान न मुझसे माँगो,
जलने का अभिमान पुलक-मन ले लो।

निष्कम्प-दीप की लौ से, जलने-जीने का वर लो,
सूरज की प्रथम किरण का, आलोक हृदय में भर लो,
जग-जीवन की ज्वालायें, चुपके अन्तर में पी लो,
विश्वास भरी बाहों का, गलहार बनाकर जी लो,
अभिमंत्रित अधर रहें ये, तुमसे हे जीवन-गीता !

तुम रुकने का वरदान न मुझसे माँगो,
जीवन का अभियान पुलक-मन ले लो।

कब लहर अछूती रहती, ज्वारों से, तूफानों से ?
कब निर्झरिणी रुकती है, पर्वत से, पाषाणों से ?
नित नव उमंग ले मन में, नव दूबों-सी मुसकाओ,
पागल-प्राण रेवा-सी, संगीत-मुखर हो गाओ,
होने दो अग्नि-परीक्षा, भय तुमको क्या है सीता ?।

तुम झुकने का वरदान न मुझसे माँगो,
हिम-गिरि का उत्थान पुलक-मन ले लो।

*

७

डगर अटपटी, मंजिल ओझल,
फिर भी आगे चरण धरूँगा।

निशि घिर आयी, पंथ न दिखता,
तम-विषधर फुफकार रहा है।

डूब चुके अन्तिम तारे भी—
पर वह लक्ष्य पुकार रहा है।

विश्वासों की ज्योति-तरी ले
तिमिर-सिन्धु-संतरण करूँगा।

❀

चाहे गति बदले जड़ता में
पर जीवन का गीत न टूटे;
तूफ़ानी लहरों में जिसने
हाथ गहा था, चाहे छूटे;
युग-युग की शापित जड़ता में
नव जीवन, संचरण भरूँगा।

तम के पार ज्योति का सागर
मिलन-तीर्थ बन कर लहराता;
जिसमें विश्वासी मन मेरा
डूब चुका है, थाह न पाता;
यदि दे मौत चुनौती मुझको
तो हँस उसका वरण करूँगा।

८

जाने कब की देखा-देखी, धीरे-धीरे प्यार बन गयी।
लहर-लहर में चाँद हँसा तो लहर-लहर गलहार बन गयी॥

स्वप्न-सँजोती-सी वे आँखें, कुछ बोलीं, कुछ बोल न पायीं,
मन-मधुकर की कोमल पाँखें, कुछ खोलीं, कुछ खोल न पायीं।
एक दिवस मुसकान-दूत जब प्रणय-पत्रिका लेकर आया;
ज्ञात नहीं, तब उस क्षण मैंने, क्या-क्या खोया, क्या-क्या पाया!

क्षण भर की मुसकान तुम्हारी, जीवन का आधार बन गयी॥

अलकों के श्यामल मेघों में, शशि-मुख का छिप-छिप मुसकाना,
कभी उलझना, कभी सुलझना, कभी स्वयं पर बलि-बलि जाना,

मन-चकोर ने अपलक देखा, अलक-पलक का रास रँगीला,
एक दिवस बरबस आँखों ने किया अचानक आँचल गीला;

नयनों की बरसात तुम्हारी, मेरे लिए बहार बन गयी!

तुमने रूप सँवारा अपना, मधुऋतु का शृंगार हो गया,
तुमने वेश सँवारा अपना, इन्द्रधनुष साकार हो गया,
तुमने ज्योंही गीत उठाया, कोकिल-स्वर चुपचाप सो गया,
अधरों के हिलते ही जैसे प्राणों का अभिसार हो गया!

प्राण! तुम्हारी गीत-मधुरिमा दिशि-दिशि का विस्तार बन गयी!

तुमने अपनी माँग भरी तो ऊषा को मुसकान मिल गयी;
प्राणों को, प्राणों की जैसे, युग-युग की पहचान मिल गयी;
तुमने तनिक निहारा हँस कर, फूल-फूल पर हास झर गया!
कली-कली के नयन खुल गये, कन-कन में उल्लास भर गया!

बहुत दिनों की दूरी पल में, अरे मिलन-त्यौहार बन गयी!

तुमने हँसकर बाँह गही तो जीवन को विश्वास मिल गया,
गमक उठी जीवन-फुलवारी, प्राणों को मधुमास मिल गया,
तम को चीर दूर—मंजिल पर, आशाओं के दीप जल उठे,
साँस-साँस सोपान बन गयी, स्वयं लक्ष्य के द्वार खुल उठे,

सिन्धु बिन्दु बन गया सहज ही, लहर-लहर पतवार बन गयी!

❀

६

नर वही है—
जो हिमालय-सा उठे जीवन-धरा पर, नर वही है।

आपदा के अग्नि-पथ पर जो कभी रुकना न जाने,
दैन्य के अभिशाप में भी जो कभी झुकना न जाने,
प्रलय-झंझावात में भी भँवर में फँसना न जाने,
गीतमय जीवन बना लें, गीत को ही धर्म माने,

गा सके संघर्ष में हँस कर सदा जो, स्वर वही है!

❀

मेघ-सा झर-झर बरस जो नेह से जग सिक्त कर दे,
फूल-सा खिल, सुरभि बिखरा, जो स्वयं को रिक्त कर दे,
देवता पत्थर नहीं है, मनुज में ही देवता है,—
आँसुओं के अर्घ्य से जो मनुज को अभिसिक्त कर दे;

चीर कर चट्टान जो आगे बढ़े, निर्झर वही है!

*

जो सदा श्रम-सीकरों से मोतियों को तोलता हो,
स्वयं हँस कर पी हलाहल, नित सुधा-रस घोलता हो,
संघर्ष-सूरज की किरण से जागरण की ज्योति लेकर—
मौन करुणा के स्वरों में मनुजता से बोलता हो,

युग-युगों की मरु-पिपासा सोख ले, सागर वही है!

*

तारकों की झिलमिली से सुख कभी मिलता नहीं है,
बिना रवि का ताप झेले, सुमन-मन खिलता नहीं है,
तारकों की छाँह तज जो धूप में पाँखें पसारे,
कर्म के गांडीव से जो स्वर्ग को भू पर उतारे,

वज्र-सा टूटे सदा निज लक्ष्य पर जो, शर वही है!

❀

१०

मुझको पाषाण न समझो तुम !
मुझमें भी करुणा-ममता है, मुझको निष्प्राण न समझो तुम !

मुझमें भी पीड़ा जगती है,
आँखें डबडब हो आती हैं,
मेरी साँस भी रोती है,
मेरी साँसें भी गाती हैं,

मेरे उर के उद्गारों को, केवल मधु-गान न समझो तुम !

परकटे विहग-सा यह मन भी
घुटता है, छटपट करता है,
प्राणों में आग सुलगती है,
नयनों से पानी झरता है,

मेरी जीवन फुलवारी को, नन्दन-उद्यान न समझो तुम !

मैने भी रवि का ताप सहा,
शशि की शीतलता भी पायी,
जल-भरे बादलों-सा झूमा,
धरती पर करुणा बरसायी,

मैने भी पतझर देखा है, मुझको मधु-प्राण न समझो तुम !

जग के दुख-दैन्य-अभावों से
मेरा मन भी अकुलाता है,
फिर भी संघर्षों में मुझको,
निर्झर - सा गाना भाता है,

झंझाघातों से खेला हूँ, मुझको म्रियमाण न समझो तुम !

❋

११

मंगल दीप जले !
सफल साधनाओं के जैसे शत-शत फूल खिले ।

जादूभरी ज्योति की वंशी
किसने आज बजा दी ?
धरती से अम्बर तक किसने
दीपावली सजा दी ?

मुग्धमना आभा के मानो सुन्दर नयन खुले !

दीपों का त्यौहार आज है,
जगमग कोना-कोना।
तम के आँगन में बिखराया
किसने इतना सोना?

आज ज्योति-गंगा में जैसे तम के प्राण धुले!

युग-युग का विश्वास सुनहला,
ज्योति-जागरण लाया।
अन्तर का आलोक बिखर कर
किरनों में मुसकाया।

नयी प्रेरणा के पंछी को नूतन पंख मिले॥

❀

१२

तुमने मेरी पीर न जानी, तुमने मेरा प्यार न देखा!
क्षण-क्षण उठने वाले मेरे, हृदय-सिन्धु का ज्वार न देखा!

आँखों में आँसू पी मैंने, मुसकानों के फूल खिलाये;
ज्वालामुखी प्राण में दाबे, मन-वीणा के तार मिलाये;

तुमने मेरी आग न देखी; आग भरा संसार न देखा!

मैंने सदा तुम्हारे पथ में, काँटे बीन, फूल बिखराये;
भ्रकुटि-भंगिमा होने पर भी, गीत वंदना के दुहराये;

तुमने अश्रु-अर्चना देखी, मन का हाहाकार न देखा!

नव वसन्त की शिशु-शोभा-सा, हृदय-दोल पर तुम्हें झुलाया,
आँसू से श्री-चरण पखारे, पलकों का मृदु चँवर डुलाया,

जीवन की मुसकानें देखीं, प्रतिक्षण का संहार न देखा!

जाने यह कैसा जादू है, पल-पल मरता, पल-पल जीता;
मैंने सिन्धु सोखना चाहा, किन्तु रहा रीता का रीता;

तट की गिनी लहरियाँ तुमने, बीच भँवर, मँझधार न देखा!
तुमने मेरी पीर न जानी, तुमने मेरा प्यार न देखा!

१३

जल बरसाओ —

सजल श्याम वर्षा के बादल जल बरसाओ,
मत तरसाओ।

झुलस गया सब तन-मन मेरा,
टूट रहा धीरज का घेरा,
पंखहीन मैं दूर बसे तुम—
छाया चारों ओर अँधेरा,

नष्ट करो दूरी के बन्धन, पास बुलाओ;
या तुम आओ।

सूख चुका है हृदय-सरोवर,
सूख चले नयनों के निर्भर,
छाती में पड़ गयीं दरारें,
टूक-टूक है यह उर-अन्तर,

हे घनश्याम ! पसीजो अब तो, तपन मिटाओ;
मत तड़पाओ ।

अब न और तुम तृषा जगाओ,
रूम-झूम मत छवि दिखलाओ,
मेरे इन सूखे प्राणों में
एक बार रसधार बहाओ,

मनभावन, सावन बन बरसो, झर-झर गाओ;
जीवन लाओ ।

मैं धरती युग-युग की प्यासी,
आज स्वयं बन गयी उदासी,
कण-कण, तृण-तृण हरे करो फिर
हे जलधर, हे गगन-प्रवासी !

हे मेरे करुणा-घन ! बरसो, गले लगाओ;
प्राण जुड़ाओ ।

❀

१४

स्वर भरूँगा—
मैं तुम्हारी बाँसुरी में स्वर भरूँगा।

एक स्वर ऐसा भरूँ कि तुम जगत को भूल जाओ;
एक स्वर ऐसा भरूँ कि चन्द्र को तुम चूम आओ;
स्वर-सुधा तुम में बहा कर, ताप सब पल में हरूँगा।
स्वर भरूँगा॥

तार कुछ ऐसे मिलें कि स्वर्ग तुम भू पर उतारो,
मरण को दे कर चुनौती, स्नेह से जीवन सँवारो,
जागरण की ज्योति से मैं, तब तुम्हें ज्योतित्त करूँगा।
स्वर भरूँगा॥

दूर,—उस ध्रुवतारिका में, लक्ष्य तुम अपना निहारो,
प्रेम-गंगा में नहा कर मुक्ति का घूँघट उघारो,
मुग्ध वासन्ती पवन बन सुरभि-घन तुम पर झरूँगा।
स्वर भरूँगा॥

ज्वार कुछ ऐसा उठे जो दो तटों को एक कर दे,
प्यार की अठखेलियों से मृत्यु का अभिषेक कर दे,
मिलन का मधुपर्व होगा और मैं तुमको वरूँगा।
स्वर भरूँगा॥

*

१५

दीप अकेले जलना होगा !
ज्वालायें अन्तर में पीकर, अंगारों पर पलना होगा !

डगमग पग, राही एकाकी,
फिर भी आगे बढ़ना होगा;
दुर्गमता के शैल-शिखर पर
हँसते-गाते चढ़ना होगा;

संबलहीन कँटीले पथ पर, निर्भय होकर चलना होगा !
दीप अकेले जलना होगा !

पग-पग पर घनघोर अँधेरा
अपने पांव पसार रहा है,
मेघाछन्न दिशायें सारी
फिर भी लक्ष्य पुकार रहा है;

भू-नभ को अपने में रँग कर जग का रंग बदलना होगा !
दीप अकेले जलना होगा !

रश्मि-रथी अभियान तुम्हारा
विघ्नों का गिरि रोक न पाये;
ज्योति-चरण के पीछे-पीछे
स्वयं लक्ष्य मुसकाता आये;

आधि-व्याधि के चक्रव्यूह से तुमको विहँस निकलना होगा !
दीप अकेले जलना होगा !

❀

१६

प्रेम की पागल पिपासा, क्या न तुम प्रिय हर सकोगे ?

सृष्टि की सौन्दर्य - सुषमा, किन्तु फिर भी अनमनी-सी,
सब तरह से भरी-पूरी किन्तु फिर भी अधबनी-सी,

इस अनोखी रिक्तता को क्या न तुम प्रिय भर सकोगे ?

मांग तो सिन्दूरपूरित किन्तु मैं अनुरागहीना,
मिल न पाये तार जिसके मूक वह अभिशप्त वीना,

रागहीना-स्वरविहीना को स्वरित क्या कर सकोगे ?

प्राण, मिल कर मिल न पाये, आज भी अभिसारिका हूँ,
ज्योति जिसकी लुट चुकी है, वह अभागिन तारिका हूँ,

मैं न अनचाही रहूँगी, क्या न मुझको वर सकोगे ?

शशि जिसे दुलरा न पाया, वह कुमुदिनी-कामिनी हूँ,
भूल कर भी जो न चमकी, हाय वह सौदामिनी हूँ,

राम मेरे, इस शिला पर, श्रीचरण क्या धर सकोगे ?

❀

१७

श्वेत फूल खिल रहे गगन में—
मेरे आंसू के मोती ही चमक रहे हैं निशा-नयन में !

दिशि-दिशि में सूनापन मेरा,
बिखर गया बन घोर अँधेरा,

आशा की लघु एक तारिका फिर चमक रही है मन में !

तारों की झिलमिल छाया में,
सुधियों की ममता-माया में,

पीड़ा के बन्धन खुल जाते, मन बँध जाता जीवन-धन में !

शशि के लिए कुमुदिनी रोती,
प्रतिपल आंसू से मुँह धोती,

शशि के बिना कुमुदिनी सूनी, मैं भी सूनी जग-जीवन में !

आँखों में रजनी कटती है,
बड़ी देर में पौ फटती है,

पल-पल ये आँखें भर आतीं, सिहर-सिहर उठती क्षण-क्षण में !

❀

१८

आज मन क्यों अनमना है ?
साज सब सूने पड़े हैं, गीत अब भी अधबना है !

सच कभी सपने न होते,
सत्य है; जग जानता है।
स्वर्ग कब उतरा धरा पर
किन्तु मन कब मानता है ?

स्वप्न को साकार करने, विकल मेरी साधना है।

चन्द्र पलकें चूम मेरी
बादलों में खो गया है,
प्यार का विश्वास जैसे
आँसुओं पर सो गया है,
नयन में छवि बस गई है, प्राण में मधु-मूर्छना है।

हृदय को अनुरक्ति दे क्यों
लोचनों को मुग्धता दी?
मधु-मिलन की यामिनी को
क्यों विरह की दग्धता दी?
अर्चना क्यों है अधूरी, क्यों सजल आराधना है?

आग कुछ ऐसी लगायी,
अधजला हूँ, जल रहा हूँ;
नयन - कोरों में युगों से
अश्रु बन कर पल रहा हूँ,
वासनायें जल सकीं कब, जल सकी कब कामना है?

१६

क्या जीवन भर तपना होगा ?

१

यदि न तुम्हारा स्नेह मिलेगा,
तो फिर कैसे दीप जलेगा ?

प्रत्याशा की अमा-निशा में कब तक और कलपना होगा ?
क्या जीवन भर तपना होगा ?

२

बलि हो शलभ प्यार पाता है,
मिट कर प्रिय को अपनाता है,

क्या न कभी सपनों का स्वामी एक बार भी अपना होगा ?
क्या जीवन भर तपना होगा ?

३

अमर लगन के कोमल अंकुर,
फूट-पनप तरु बने मनोहर,

क्या न कभी वे चरण मिलेंगे, क्या न कभी सच सपना होगा ?
क्या जीवन भर तपना होगा ?

४

मानस के मोती चुन-चुन कर,
प्रिय पर लुटा, नाम गुन-गुन कर,

आह, अर्घ्य दे खारे जल का, नाम सदा क्या जपना होगा ?
क्या जीवन भर तपना होगा ?

❀

२०

मेरे दीप जलोगे कब तक ?
माना जलना धर्म तुम्हारा,
ज्योति लुटाना कर्म तुम्हारा,

मधुर अधर पर ज्वाला लेकर, बोलो और घुलोगे कब तक ?

मेरे दीप जलोगे कब तक ?
तिमिर-घटाओं—तूफ़ानों में,
क्षीण-गात, जर्जर प्राणों में,

अमर ज्योति के फूल खिला कर, मेरे प्राण ! खिलोगे कब तक ?

मेरे दीप जलोगे कब तक ?
अमर जलन का लेकर संबल,
अंगारों-संघर्षों में पल,

जग-जीवन के तममय पथ पर, साथी ! संग चलोगे कब तक ?

मेरे दीप जलोगे कब तक ?
साँसों में ले अमर निवेदन,
प्राणों में नीरव नीराजन,

पूजा-दीप ! शून्य में जलकर, निज को और छलोगे कब तक ?
मेरे दीप जलोगे कब तक ?

❀

२१

नयन ने नयन से कभी क्या कहा था,
न तुम जान पायीं, न मै जान पाया !

विनत लोचनों की मधुर-मौन भाषा—
न जाने कहाँ की सुधा ढोलती थी !
नशीली हँसी की मदिर-मुग्ध आभा—
नहीं जान पाया कि क्या बोलती थी !

कि चितचोर चितवन ने क्या क्या चुराया ?
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया !

नयन ने नयन से कभी क्या कहा था,
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया !

सजीली - रँगीली तरल रूप-किरनें,
थिरकतीं - मचलतीं हृदय में समायीं,
नहीं भान अब तक कि क्या बीच में था—
न मैं दूर भागा, न तुम पास आयीं,

हृदय ने हृदय को सदा गुदगुदाया !
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया !

नयन ने नयन से कभी क्या कहा था,
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया !

कली ने चटक कर मधुप को पुकारा,
सुरभि ने पवन के लिए बाँह खोली;
उलझते-सुलझते रहे लाज-बन्धन
मगर प्रीति भोली कभी कुछ न बोली,

प्रणय ने प्रणय का मधुर गीत गाया,
न तुम जान पायीं, न मैं जान पाया !

❀

२२

आज दीप - निर्वाण हो गया !
जन-जन की आँखों का तारा, महाशून्य में कहाँ खो गया ?

उर में स्नेह - सिन्धु लहराता,
दिशि-दिशि में आलोक लुटाता,
स्वयं एक कोने में जल कर
घर-घर अगणित दीप जलाता,

पुण्य-प्राण की प्रेम-प्रभा से, जन-परिजन के प्राण धो गया !
आज दीप-निर्वाण हो गया !!

नक्षत्रों की दीप्ति अमर है,
(पर वह नभ-सुषमा का घर है!)
घर-घर के लघु दीपक पर ही
घर-घर का जीवन निर्भर है,

ऐसे ही तो एक दीप से, अरे लोक-कल्याण हो गया!
आज दीप-निर्वाण हो गया!!

जो न आँधियों से डरता था,
जाग्रति-ज्योति सदा झरता था,
जो निष्कम्प व्रती-सा जल कर
जन-मन को ज्योतित करता था,

जिसकी कनक-किरण से घर-घर सहज स्वर्ग-निर्माण हो गया!
आज दीप-निर्वाण हो गया!!

जिसने ज्योति लुटाना जाना,
सदा स्नेह को ही धन माना,
जीवन की चिर उज्ज्वलता में
जग के जीवन को पहचाना!

जीवन की आलोक-रश्मियाँ, जन-जीवन में विहँस बो गया!
आज दीप-निर्वाण हो गया!!

जिसने केवल जलना जाना,
स्नेह - प्रेम पर पलना जाना,
दृढ़ विश्वासों के संबल पर
जीवन - पथ पर चलना जाना,

सहसा निठुर प्रभञ्जन द्वारा काल-अंक में हाय सो गया !
आज दीप-निर्वाण हो गया !!

*

२३

क्या हुआ यदि दूर हो तुम, नित्य अनुचिंतन करूँगा!

रूप का काजल तुम्हारा
नयन–मन में भर गया है;
चाँद पूनों का कि जैसे—
सुधा–सावन झर गया है;
आँख से ओझल रहो तुम, किन्तु नित दर्शन करूँगा।

प्रीति के बादल तुम्हारे
छा रहे मेरे गगन में,
मधुर सपने ही तुम्हारे
पल रहे मेरे नयन में,
पंथ पर पलकें बिछाये, सतत मधु-सिंचन करूँगा।

कौन साँसों के सदन में
जन्म-जन्मों से बसा है ?
कौन मेरी धड़कनों में
प्रति निमिष-प्रतिपल हँसा है ?

कौन कहता दूर हो तुम, नित्य अभिनन्दन करूँगा !

क्या कभी निष्फल रही हैं,
अश्रुमय आराधनायें ?
क्या कभी असफल रही हैं,
पुण्य-पावन साधनायें ?

एक इस विश्वास पर ही नित नमन-वन्दन करूँगा !

❀

२४

यदि तुम मेरी बाँह गहो तो पथ के शूल फूल बन जायें।

मधुप फूल से, शलभ दीप से,
जीवन का वरदान माँगते,
हृदय हृदय से, प्राण प्राण से
जीवन का मधु-गान माँगते,

यदि तुम प्रतिपल संग रहो तो विहँसें स्वर्ग दाहिने-बाँयें!

प्रणय-पुलक-विश्वास-प्यार से
गीत अधूरा पूरा कर दो,

छलक-छलक, मेरी नस नस में,
मुसकानों की मधुता भर दो,
यदि तुम मेरे साथ बहो तो दो तट स्वयं आप मिल जायें !

स्नेह-प्यार की दो साँसों से,
जीवन-दीपक जलता आया,
सुख-दुख के दो चक्रों से ही
जीवन का रथ चलता आया,
संग-संग यदि व्यथा सहो तो सारे दुख सुख में बँट जायें !

विभ्रम पथ पर पथिक अकेला
फिर भी मंजिल तक जाना है !
सत्य बना युग-युग के सपने
गीत जागरण का गाना है !

यदि तुम जीवन-कथा कहो तो पृष्ठ सुनहले खुलते जायें !
यदि तुम मेरी बाँह गहो तो पथ के शूल फूल बन जायें ।

❀

७५

मौन रात-रानी तू आती ;
अंचल के चमकीले मोती, आ नभ-आँगन में बिखराती ।

दूर, क्षितिज के पार सूर्य को, सजनि, कौन चुपचाप बुलाता ?
वसुधा का आलोकित मुख जब, तम-अवगुण्ठन में छिप जाता ;
निर्जन में तरु के शिखरों पर, तू आ झिलमिल दीप जलाती ।

मौन रात-रानी तू आती ।

नीरवता दिशि-दिशि में हँसती, लहरों में संगीत न होता ;
मधुप-पुंज गुंजार भूलकर, बन्दी हो पंकज में सोता ;
तब तू अपना तिमिर-प्यार ले, जग के प्राणों पर छा जाती ।

मौन रात-रानी तू आती ।

सजनि, विश्व की पलकों पर जब, सपनों के संसार झूलते ;
विगत मिलन-वेला के पल-पल, विरही के उर शूल हूलते ;
तू भी अपने तुहिन-अश्रु से, क्यों तब जगको करुण बनाती ?

मौन रात रानी तू आती ।

दीप प्रेमकी ज्वाला पी कर, आभा की गोदीमें पलता ;
फिर भी तेरा प्यार न पाता, सिर धुनते प्रभात आ मिलता ;
तू ऊषा-पावक में जल कर, जग को सोने से नहलाती ।

मौन रात-रानी तू आती ।

चिर-परिचित वह पग-ध्वनि सुन-सुन, तारे गिन मैं अलख जगाता;
दूर, वहाँ तमके परदमें, पर अपनी छाया ही पाता ;
तू बेला-निशि-गन्ध-सुमन ले, क्यों 'उनके' पथमें बिछ जाती ?

मौन रात-रानी तू आती!

❀

२६

सखि, अब कुछ भी याद नहीं क्या ?
वीतराग हो गयीं सदा को कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं क्या ?

स्नेह - समर्पण की वे रातें,
साँसों की साँसे से बातें,
अधरों का अमृत छलकाना,
नयनों की झर-झर बरसातें,

मेरी कसम, सत्य तुम कह दो; अब जीवन में स्वाद नहीं क्या ?

कभी रूठना, कभी मनाना,
कभी लाज में गड़-गड़ जाना,
अपनी शपथ दिला कर शशि का
मेघों में छिप-छिप मुसकाना,

पहले तो लाखों शिकवे थे, अब कोई फरियाद नहीं क्या?

उपहासों से कभी न डरना,—
अंगारों पर ही पग धरना,
स्वयंवरा सरिता का प्रण ले,
जग-जीवन ज्योतिमय करना,

बिना तुम्हारे, मेरी दुनिया भी, बोलो, बर्बाद नहीं क्या?

अपनी भूलों पर पछताना,
मेरी भूलों पर बलि जाना,
मन में मंगल-दीप जला कर
स्वयं वन्दना बन-बन जाना,

उजड़ चुकी जो दिल की बस्ती, यादों से आबाद नहीं क्या?

*

२७

तुम तारों की झिलमिली न मुझे दिखाओ,
माटी के दीपक से ही मेरा नाता!

माना, तारों की छाँह भली लगती है,
पर जुगनू में क्या ज्योति कभी पगती है?
दूर्वा पर हँसती ओस सभी को भाती,
पर ओस भला कब किसकी प्यास बुझाती?

तुम तारों का संगीत न मुझे सिखाओ;
मैं तो जीवन के गीत सदा से गाता।

सच है, सपनों का जाल सुनहला होता,
वह जाल कि जिसमें फँसते ही मन रोता,
मीठे सपनों का स्वाद न मैंने जाना,
जाना है, केवल संघर्षों में गाना,

तुम सपनों का संसार न मुझे दिखाओ,
मैं संघर्षों में ही जीवन-सुख पाता।

सच, रूप सभी पर जादू कर जाता है,
मधु-मादकता नस-नस में भर जाता है,
पर जीता केवल प्यार, रूप मर जाता,
सौरभ को मिलते प्राण, फूल झर जाता,

तुम अपना चम्पक गात न मुझे दिखाओ,
मैं देख रहा हूँ हृदय, हृदय ही भाता।

महलों में करुणा नहीं, कामना बसती,
महलों में पूजा नहीं, वासना हँसती,
महलों में मानव नहीं, स्वर्ण का पुतला,—
जिसका कि भूल कर भी न कभी दिल पिघला,

सोने-चाँदी के महल न मुझे दिखाओ,
मेरी कुटिया में स्वर्ग स्वयं बस जाता!

*

२८

गीतकार उठ गया धरा से गीत आज भी बोल रहे हैं !

जिसने भावों को भाषा दी, कलित कल्पनाओं को वाणी,
जिसके प्राणों में – गीतों में मूर्त हुई सचमुच कल्याणी,
गरल-पान कर जिसने जग को मानवता का पाठ पढ़ाया,
काव्य-साधना के चरणों पर जिसने जीवन-फूल चढ़ाया,

स्वर्ण-विहग जिसके गीतों के, धरा-गगन में डोल रहे हैं !

जिसके प्राणों में पीड़ा थी, ओठों पर मुसकान रँगीली,
जिसके जीवन में ज्वाला थी, फिर भी आँखें हुईं न गीली,
जिसने खुद घर फूँक तमाशा देखा कभी न रोया-गाया,
जिसने स्वयं मौत को न्योता और मौत को गले लगाया,

जिसके गीत स्वयं अपने में, अरे, सदा अनमोल रहे हैं!

छंद वरण कर, ज्योति-चरण धर, जो जीवन भर चलता आया,
ज्वाला की वरमाला पहने, सदा अकम्पित जलता आया,
शाश्वत गीत लुटा जगती को, जग-वैभव को छलता आया,
मधु-प्राणों को मादकता दे—मादकता में पलता आया,

जिसके गीतों के स्वर अब भी कन-कन में रस घोल रहे हैं!

दूर कहीं गीतों का राजा, गीतकार को बुला रहा था,
सूर्य-चन्द्र-तारों के दीपक अगवानी में जला रहा था,
नन्दन-कानन के कुसुमों से चन्दन-पथ को सजा रहा था,
महा मिलन का गीत अनोखा हृदय-वीन पर बजा रहा था,

कवि-मानव के लिए देव भी द्वार स्वर्ग का खोल रहे हैं! ×

× स्वर्गीय पं० केशवप्रसाद पाठक की मृत्यु से प्रेरित होकर लिखित

❋

२६

कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी !

मानव को पूजा - प्यार मिले ;
जीने का तो अधिकार मिले ;
जन-जन के मुख पर हास खिले, कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी !

(१)

कट गयी दासता की कड़ियाँ, अब वर्गभेद भी काट चलो ;
मानवता का अभिनन्दन कर, पशुता को जड़से छाँट चलो ;

सब झूठे बन्धन तोड़ चलो,
अन्यायों के घट फोड़ चलो,

वीणा-वादन सुन चुके बहुत, दीनों की आह सुनो साथी!
कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी!

(२)

कुछ दो टुकड़ों को तरस रहे, कुछ मोहनभोग उड़ाते हैं,
कुछ श्रम से चूर थके-माँदे, कुछ बैठे-बैठे खाते हैं,

यह शोषण अब तो बन्द करो,
जीवन में नव आनन्द भरो,

समता का सूरज निकल पड़े, कुछ ऐसी बात गुनो साथी!
कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी!

(३)

वैभव-विलास की केलि कहीं, कोई किस्मत पर रोता है;
कोई फूलों पर चलता है, कोई काँटों पर सोता है;

यह न्याय कहां का बोलो तो?
यह भेद जरा कुछ खोलो तो!

उठ जाय विषमता यह जग से, कुछ ऐसा जाल बुनो साथी!
कुछ ऐसा पंथ चुनो साथी!

❀

३०

निकल पड़ी जलधार !

उस दिन पूजा की वेला में निकल पड़ी जलधार !
हमारी आँखों से जलधार !

*

जिनका जग ने नाम न जाना,
जिनके कहीं मजार नहीं,
जिनके जीवन की बगिया में
आयी कभी बहार नहीं,

जिनने कभी न पूजा पायी,
जिनको कभी न मान मिला,
शीश - दान करने का जिनको
बस, केवल वरदान मिला,
उनको अर्घ्य चढ़ाने ही तो निकल पड़ी जलधार,
हमारी आँखों से जलधार!

*

जो घट भरने के पहिले ही
गुपचुप तट पर फूट गये,
जो तारे सन्ध्या–वेला ही
निर्जन में ही टूट गये,
हरियाली लाने के खातिर
जिनने शीश कटाये थे,
आजादी की बलिवेदी पर
हँसकर शीश चढ़ाये थे,
उनकी मूक अर्चना में ही निकल पड़ी जलधार,
हमारी आँखों से जलधार!

*

जो ज्वाला बन भभक उठे थे,
जिनने आग लगायी थी,

जिन्हें न दुनिया ने पहचाना,
दुनिया जिन्हें परायी थी
जो जीवन भर चले आग पर,
फाँसी पर हँस झूल गये!
स्याही जिनको भूल चुकी है,
हम भी जिनको भूल गये;
उनकी याद हरी हो आयी, निकल पड़ी जलधार,
हमारी आँखों से जलधार!

*

जो शोला बन फूट पड़े थे,
राख हुए, उड़ गये कहाँ?
तूफानों के बीच न जाने,
बुझे कहाँ, गड़ गये कहाँ?
जिनकी हरी दूब-सी पत्नी
अब भी बैठी रोती है;
जिनकी बूढ़ी मां बेचारी,
आँसू से मुँह धोती है,
उनको अञ्जलि देने ही तो निकल पड़ी जलधार!
हमारी आँखों से जलधार!

*

तड़प-तड़प मर गये भूख से
तरसे दाने—दाने को;

जिनकी लाश न मरघट पहुँची,
चिता न मिली जलाने को;
श्वान-गिद्ध त्यौहार मनाते,
कौन रोकने वाला था ?
सारा गांव मसान बना था,
कौन टोकने वाला था ?

उनका तर्पण करने जैसे निकल पड़ी जलधार !
हमारी आँखों से जलधार
उस दिन आजादी की वेला निकल पड़ी जलधार !

*

३१

हृदय-पट पर आँसुओं से लिख दिये जो गीत तुमने,

वे कभी क्या मिट सकेंगे ?

गीत–वे ऐसे कि जिनको धरा अब तक गा रही है,
गीत–वे ऐसे कि जिनको मधु-पवन दुहरा रही है,
गीत–वे ऐसे कि जिनसे गीतमय मैं बन गया हूँ,
गीत–वे ऐसे कि जिनको चाँदनी दुलरा रही है,
प्यार के मोती अचानक जो किसी दिन पा गया था,

वे कभी क्या लुट सकेंगे ?

रूप—वह ऐसा कि जिससे चाँद भी शरमा गया था,
स्वर्ग का सपना कि जैसे नया जीवन पा गया था,
युग-युगों की रिक्ततायें मेंट दी तुमने अचानक—
स्वय सुख चल कर कि जैसे द्वार मेरे आ गया था,
बिना माँगे ही मुझे वरदान जो तुमसे मिले थे,

वे कभी क्या घट सकेंगे ?

वह समर्पण,—प्राण जिसकी कथा अब तक कह रहे हैं,
वह समर्पण,—याद में जिसकी कि आँसू बह रहे हैं,
तुम मुझे चाहे भुला दो, मैं न तुमको भूल पाता;
कह नहीं सकता कि तुम बिन प्राण कैसे रह रहे हैं ?
बँध गये जिस कुसुम-बन्धन में सदा को प्राण मेरे—

वे न बन्धन कट सकेंगे !

*

३२

सुख उस दिन नाच उठा था—

अनुराग - पूर्णिमा-सी तुम, उल्लास लुटाती आयीं।
जीवन-मंदिर में मेरे, नव ज्योति जगाती आयीं।

*

युग - युग के अभिशापों को, वरदान बनाती आयीं।
मन - मुकुल प्रफुल्लित कर तुम, सौरभ सरसाती आयीं।

*

अन्तर की स्नेह-घटा को, हँसकर बरसाती आयीं।
इस मरुमय जीवन में तुम, रसधार बहाती आयीं!

*

जीवन - निकुञ्ज की मेरे, आशा की कलियाँ फूलीं।
साकार मधुरिमा-सी तुम, मृदु प्राण - लता पर झूलीं।

मनुहारें फूल उठी थीं, दिशि-दिशि सुख-लाली छायी।
कोकिल ने पञ्चम स्वर भर, मधु-मिलन-रागिनी गायी।

*

शशि मानो चमक उठा था, अलकों के श्याम घनों में।
सपना साकार हुआ था, चुपके से बहुत दिनों मे।

*

उन लाजभरी आँखों में, रस - गागर छलक रही थी।
छवि के आनन पर मानो, मादकता झलक रही थी।

*

मुसकानभरी चितवन में, नव जीवन खेल रहा था।
मेरे अन्तर में कोई, रस - स्नेह उड़ेल रहा था।

*

मानस की मुग्ध तरङ्गें, राका-शशि चूम रही थीं।
किरनों के भुज - बन्धन में, वेसुध हो झूम रही थीं।

*

यौवन का अभिनन्दन था, प्राणों के गठ - बन्धन में।
सुख उस दिन नाच उठा था, मेरे जीवन - आँगन में।

३३

वीरों के स्मारक पर

हे मूर्तिमान बलिदान-गान,
तेरे चरणों पर चढ़ें प्राण!

तुझ में सोते वे अमर वीर
जिन के अन्तर को चीर-चीर
बैरी ने मारे तीक्ष्ण तीर
पर हुए न वे फिर भी अधीर,—

माता का मर कर रखा मान,
तेरे चरणों पर चढ़ें प्राण!

मानव - जीवन का वह विकास
जिस के प्राणों के आस - पास
नित खेल - खेल उल्लास - हास
छाता था ऋतुपति का विलास

तुझ में सोया पतझर - समान,
तेरे चरणों पर चढ़े प्राण !

कितने प्राणों के मृदुल फूल
फाँसी पर हँस कर भूल - झूल
अपने तन को कर धूल - धूल
माँ के चरणों में चढ़ समूल

दे गये तुझे अमरत्व दान,
तेरे चरणों में चढ़ें प्राण !

कितने प्राणों का मधुर प्यार
कितनी माताओं का दुलार
कितनी आत्माओं का सिंगार
कितनी बहनों का हृदय–हार

है छिपा हुआ तुझ में अजान,
तेरे चरणों पर चढ़ें प्राण !

कितनी वधुओं का सुख-सुहाग
लेकर अपना अनुराग-राग
मधुमय जीवन में लगा आग
तुझ पर बिखरा है बन पराग –,

केवल तू निकला भाग्यवान,
तेरे चरणों पर चढ़ें प्राण!

तुझ पर है यह क्या लाल-लाल ?
रण-वीरों की कुमकुम-गुलाल !
हैं वीर-भेंट के कुसुम लाल
जग तुझे चढ़ा होता निहाल,

गा-गा वीरों के कीर्ति-गान!
तेरे चरणों पर चढें प्राण।

३४

प्रजातंत्र की वर्षगांठ पर—

राष्ट्र-देवता के चरणों में, शत-शत नमन हमारा।

प्रजातंत्र की वर्ष गाँठ है, जगमग कोना—कोना,
बालारुण की किरण-किरण से बिखर रहा है सोना।
हिमकिरीट-शोभित हिमगिरि का मरतक डोल रहा है,
गंगा-यमुना की लहरों में जीवन बोल रहा है।
लाल किले पर राष्ट्र-पताका देखो फहराती है,
मुक्त भारती ऊँचे स्वर में पुलकित हो गाती है—
'मुक्त धरा है, मुक्त गगन है, मुक्त राष्ट्र की वाणी—'

चमक रहा स्वातंत्र्य-सूर्य वह, दूर हुआ अँधियारा
राष्ट्र-देवता के चरणों में शत-शत नमन हमारा!

आजादी का पुण्य पर्व है, आयो मंगल वेला,
ग्राम-ग्राम औ' नगर-नगर में लगा हर्ष का मेला।
एक नयी आभा दिल्ली में देखो फूट रही है,
एक नया आनन्द हमारी झाँसी लूट रही है।
बुन्देलों का देश मगन है, हल्दीघाटी गाती,
वीर शिवा की पुण्य भूमि भी फूली नहीं समाती।
सश्य-श्यामला की शोभा में सौ-सौ चाँद लगे हैं,

हिन्द महासागर भी करता जय-जय गान तुम्हारा,
राष्ट्र-देवता के चरणों में शत-शत नमन हमारा !!

धरती अपनी, अम्बर अपना, दिशि-दिशि हास खिला है,
कोटि-कोटि प्राणों को जैसे नव विश्वास मिला है।
द्वार-द्वार पर मंगलघट हैं, मंगल - दीप धरे हैं,
कंठ - गंठ में नये तराने, नये गीत उभरे हैं।
नित्य नया संघर्ष हमारे सम्मुख आज खड़ा है,
पर धरती - अम्बर अपना है, यह विश्वास बड़ा है।
यही एक विश्वास किसी दिन सपना सत्य करेगा,

लोकतंत्र का अभिनन्दन है - किसने आज पुकारा !
राष्ट्र-देवता के चरणों में शत - शत नमन हमारा !!

❀

३५

त्रिपुरी

बीते वैभव की एक झलक, मैं सूनेपन की रानी हूँ।
कलरव-कूजित रेवा-तट की, मैं विस्मृत करुण कहानी हूँ॥

*

मैं सान्ध्य-गगन की सुन्दरता, मैं सूखे सुमनों की लाली।
क्यों बेसुध पीड़ा जगा रही, यह शशि की शीतल उजियाली?

*

मैं सुमन-हीन सूखी लतिका, मैं व्याकुल-उर विधवा नारी।
आँसू भर-भर कर देख रही, यह उजड़ी जीवन-फुलवारी॥

कलचुरी राज्य के गौरव की, मैं क्षीण ज्योति-धूमिल छाया।
विन्ध्याचल का सारा विषाद, किसने आ मुझ पर बिखराया ?

*

गयकर्ण, कर्ण की पुण्य जननि, मेरे लालों का यश महान।
अह्लणदेवी का भक्ति-भाव, अब तक है मुझमे मूर्तिमान ॥

*

मैं खंडित तन, मे अति उन्मन, टूटी वीणा की विकल तान।
पत्तों के मर्मर में सुनती, मै वीर कर्ण के कीर्ति-गान ॥

*

मेरे चरणों पर चढ़े कभी, हीरक-मणियों के स्वर्ण-थाल।
हँस-हँस कर नृप-बालाओं ने, छिड़की मुझपर केशर-गुलाल ॥

*

गूँजा था मुझमें विजय-हास, तलवारों का झनझन-निनाद।
गीले कपोल, बिखरी लट ले, कर रही आज क्यों आर्तनाद ?

*

खँडहर है अब वह कर्णवती, किंकिणि-कंकण का हास नहीं।
है झींगुर की झंकार यहाँ, है कोकिल कंठ-विलास नहीं ॥

*

मधु-कुञ्ज बने अब झारखंड, हँसते न कहीं पर मृदुल फूल।
मेरे आनन्द-निकेतन में, उड़ रही आज क्यों मलिन धूल ?

है कहाँ आज वह राजमहल, है आज कहाँ वह सिंहद्वार ?
आ जिस थल विजयी सेनायें, हँसती पाकर जय-सुमन - हार।

*

जिस सौख्य-सदन की स्वर-लहरी, देती दिशि-दिशि में प्राण फूँक।
अब वहाँ चिता की चिनगारी, निशि भर बोला करते उलूक ॥

*

रुनझुन-रुनझुन पग-पायल की, सुधि से अधीर हो झूमझूम।
अवसान-सेज पर सोती हूँ, नर-कंकालों को चूम-चूम !

*

मैं अमा-निशा का भाग्य लिए, व्याकुल निर्जन में रोती हूँ।
यह युग-युग का जीवन-विषाद, बैठी दृग-जल से धोती हूँ ॥

*

बीते वैभव की एक झलक, मैं सूनेपन की रानी हूँ।
कलरव-कूजित रेवा-तट की, मै विस्मृत करुण कहानी हूँ ॥

३६

मदन-महल से

बोलो - बोलो पाषाण - भवन !
क्यों खंडित तन, क्यों हो उन्मन ?
जीवन दे तुमको मदनशाह,
हो गए अमर बन गुण-निधान ;
इन युगल शिलाओं के ऊपर
प्रकटे तुम ले सौन्दर्य-प्रान ;
फिर विजन-व्योम में चमके थे,
कुछ काल तेज तारा समान ;
पर काल प्रबल, जीवन नश्वर,
हो गये भग्न, पड़ गये म्लान ;
क्या उल्का-सा अस्थिर जीवन ?
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ॥१॥

चिर मूर्च्छित-से, हो आत्म-लीन,
काले मेघों-से अति उदास ;
तुम मौन तपस्वी-से सकरुण,
निर्जन-वन में कर रहे वास ;
यह पश्चिम का रंजित वितान,
जिससे झरता था मधुर हास ;
ये हरित-हरित तरु-बल्लरियाँ,
तुमसे हिल-मिल करतीं विलास ,
क्यों आज लिए हैं सूनापन ?
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ॥२॥

इन श्याम शिलाओं के उर से,
वर्षा में झरती रजत-धार ;
म ऋतु में वन की डाल-डाल.
झुक-झुक पड़ती ले सुरभि-भार :
मञ्जरित आम्र-तरु के ऊपर,
पिक के स्वर में जगती पुकार ;
सौरभ का मादक भार लिए,
हँसती आती मलयज बयार ;
पर खंडित अब वह सौख्य-सदन ;
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ॥३॥

दिन-दिन दिनकर ले नव सुवर्ण,
पहिनाता तुमको रश्मि-माल ;

राका-शशि अपनी रजत-धार,
बिखरा तुम पर हो होता निहाल ;
पर नियति-नटी के नर्तन से,
फैला तुम पर दुर्भाग्य-जाल ;
छाया गौरव पर अन्धकार,
नत हुआ सदा को उच्च भाल ;
यह कैसा असमय परिवर्तन !
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ||४||

तुममें वैभव की ज्योति जगी,
जब खेला था प्रभुता-विलास ;
तुममें दो सुन्दर चरण चले,
तुमने नूपुर का सुना हास ;
तुमने जीवन में एक दिवस,
पाया छवि का उज्ज्वल प्रकाश ;
वह रूप-राशि, वह सुन्दरता,
पल में पहुँची लेकर विनाश ;
रह गये खड़े तुम सजल नयन !
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ||५||

मुगलों की वह साम्राज्य-तृषा,
आ पहुँची सजकर रण-विधान ;
पल भर में तुमसे फूट पड़ा,
विद्रोही भीषण समर-गान ·

हँस-हँस प्राणों पर खेल वीर,
दे गये तुम्हें अमरत्व - दान ;
दुर्गा* निज पावन रक्त सींच,
दे गई तुम्हें गौरव महान ;
क्यों करें न उनका यश-गायन ?
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ॥६॥

हे भग्न भावना के समूह !
अति जीर्ण गात, शोभाविहीन ;
तुम खँडहर हो आहत-मन से,
हत मानव - से दयनीय-दीन ;
फिर भी अतीत की स्वर्ण-झलक,
रह-रह हँस पड़ती हो मलीन ;
युग-युग का तुम इतिहास लिए,
तुम पूजनीय, तुम चिर-नवीन ;
करते हम सब मिल तुम्हें नमन ,
बोलो - बोलो पाषाण - भवन ! ॥७॥

---

* रानी दुर्गावती ।

❀